तथा च त्वं दिव्यवपुर्भव भूयो महीपते।
तथाऽन्तकाले मामेव लयमेष्यसि सुव्रत॥ ३७
कीर्तिश्च शाश्वती तुभ्यं भविष्यति न संशयः।
तत्रैव याजका यज्ञान् यजिष्यन्ति सहस्त्रशः॥ ३८
तस्य क्षेत्रस्य रक्षार्थं ददौ स पुरुषोत्तमः।
यक्षं च चन्द्रनामानं वासुकिं चापि पन्नगम्॥ ३९
विद्याधरं शङ्कुकर्णं सुकेशिं राक्षसेश्वरम्।
अजावनं च नृपतिं महादेवं च पावकम्॥ ४०
एतानि सर्वतोऽभ्येत्य रक्षन्ति कुरुजाङ्गलम्।
अमीषां बलिनोऽन्ये च भृत्याश्चैवानुयायिनः॥ ४१
अष्टौ सहस्त्राणि धनुर्धराणां
ये वारयन्तीह सुदुष्कृतान् वै।
स्त्रातुं न यच्छन्ति महोग्ररूपा-
स्त्वन्यस्य भूताः सचराचराणाम्॥ ४२
तस्यैव मध्ये बहुपुण्य उक्तः
पृथूदकः पापहरः शिवश्च।
पुण्या नदी प्राङ्मुखतां प्रयाता
यत्रौघयुक्तस्य शुभा जलाढ्या॥ ४३
पूर्वं प्रजेयं प्रपितामहेन
सृष्टा समं भूतगणैः समस्तैः।
मही जलं वह्निसमीरमेव
खं त्वेवमादौ विबभौ पृथूदकः॥ ४४
तथा च सर्वाणि महार्णवानि
तीर्थानि नद्यः स्त्रवणाः सरांसि।
संनिर्मितानीह महाभुजेन
तच्चैक्यमागात् सलिलं महीषु॥ ४५

देवदेव उवाच

सरस्वतीदृषद्वत्योरन्तरे कुरुजाङ्गले।
मुनिप्रवरमासीनं पुराणं लोमहर्षणम्।
अपृच्छन्त द्विजवराः प्रभावं सरसस्तदा॥ ४६
प्रमाणं सरसो ब्रूहि तीर्थानां च विशेषतः।
देवतानां च माहात्म्यमुत्पत्तिं वामनस्य च॥ ४७
एतच्छ्रुत्वा वचस्तेषां रोमहर्षसमन्वितः।
प्रणिपत्य पुराणर्षिरिदं वचनमब्रवीत्॥ ४८

अच्छा, ऐसा ही होगा। राजन्! तुम पुनः दिव्य शरीरवाले हो जाओ तथा हे सुव्रत! (दृढ़तासे व्रतका सुष्ठु पालन करनेवाले) अन्तकालमें तुम मुझमें ही लीन हो जाओगे॥ ३३—३७॥

[भगवान् विष्णुने आगे कहा—] निःसंदेह तुम्हारी कीर्ति सदा रहनेवाली होगी। यहाँपर यज्ञ करनेवाले व्यक्ति (यजमान) यज्ञ करेंगे। फिर, उस क्षेत्रकी रक्षा करनेके लिये उन पुरुषोत्तमभगवान्ने राजाको चन्द्र नामक यक्ष, वासुकि नामक सर्प, शङ्कुकर्ण नामक विद्याधर, सुकेशी नामक राक्षसेश्वर, अजावन नामक राजा और महादेव नामक अग्निको दे दिया। ये सभी तथा इनके अन्य बली भृत्य एवं अनुयायी वहाँ आकर कुरुजाङ्गलकी सब ओरसे रक्षा करते हैं॥ ३८—४१॥

आठ हजार धनुषधारी, जो पापियोंको यहाँसे हटाते रहते हैं, वे उग्र रूप धारणकर चराचरके दूसरे भूतगण (पापियों)-को स्नान नहीं करने देते। उसी (कुरुजाङ्गल)-के मध्य पाप दूर करनेवाला एवं अति पवित्र कल्याणकारी पृथूदक (पोहोआ) नामक तीर्थ है, जहाँ शुभ जलसे पूर्ण एक पवित्र नदी पूर्वकी ओर बहती है। इसे प्रपितामह ब्रह्माने सृष्टिके आदिमें पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन और आकाशादि समस्त भूतोंके साथ ही रचा था, महाबाहु ब्रह्माने पृथ्वीपर जिन महासमुद्रों, तीर्थों, नदियों, स्रोतों एवं सरोवरोंकी रचना की उन सभीके जल उसमें एकत्र प्राप्त हैं॥ ४२—४५॥

[यहाँसे कुरुक्षेत्र और उसके सरोवरका माहात्म्य कहते हैं—]

देवदेव भगवान् विष्णु बोले— पहले समयमें ब्राह्मणोंने सरस्वती और दृषद्वती (घग्गर)-के बीचमें स्थित कुरुक्षेत्रमें आसीन मुनिप्रवर वृद्ध लोमहर्षणसे वहाँ स्थित सरोवरकी महिमा पूछी और इस सरोवरके विस्तार, विशेषतः तीर्थों और देवताओंके माहात्म्य एवं वामनके प्रादुर्भावकी कथा कहनेकी प्रार्थना की। उनके इस वचनको सुनकर रोमाञ्चित होते हुए पौराणिक ऋषि लोमहर्षण उन्हें प्रणाम कर (फिर) इस प्रकार बोले— ॥ ४६—४८॥

Scanned with CamScanner

लोमहर्षण उवाच

ब्रह्माणमग्र्यं कमलासनस्थं
विष्णुं तथा लक्ष्मिसमन्वितं च।
रुद्रं च देवं प्रणिपत्य मूर्ध्ना
तीर्थं महद् ब्रह्मसरः प्रवक्ष्ये॥ ४९

रन्तुकादौजसं यावत् पावनाच्च चतुर्मुखम्।
सरः संनिहितं प्रोक्तं ब्रह्मणा पूर्वमेव तु॥ ५०

कलिद्वापरयोर्मध्ये व्यासेन च महात्मना।
सरःप्रमाणं यत्प्रोक्तं तच्छृणुध्वं द्विजोत्तमाः॥ ५१

विश्वेश्वरादस्थिपुरं तथा कन्या जरद्गवी।
यावदोघवती प्रोक्ता तावत्संनिहितं सरः॥ ५२

मया श्रुतं प्रमाणं यत् पठ्यमानं तु वामने।
तच्छृणुध्वं द्विजश्रेष्ठाः पुण्यं वृद्धिकरं महत्॥ ५३

विश्वेश्वराद् देववरो नृपावनात् सरस्वती।
सरः संनिहितं ज्ञेयं समन्तादर्धयोजनम्॥ ५४

एतदाश्रित्य देवाश्च ऋषयश्च समागताः।
सेवन्ते मुक्तिकामार्थं स्वर्गार्थं चापरे स्थिताः॥ ५५

ब्रह्मणा सेवितमिदं सृष्टिकामेन योगिना।
विष्णुना स्थितिकामेन हरिरूपेण सेवितम्॥ ५६

रुद्रेण च सरोमध्यं प्रविष्टेन महात्मना।
सेव्य तीर्थं महातेजाः स्थाणुत्वं प्राप्तवान् हरः॥ ५७

आद्यैषा ब्रह्मणो वेदिस्ततो रामह्रदः स्मृतः।
कुरुणा च यतः कृष्टं कुरुक्षेत्रं ततः स्मृतम्॥ ५८

तरन्तुकारन्तुकयोर्यदन्तरं
यदन्तरं रामह्रदाच्चतुर्मुखम्।
एतत्कुरुक्षेत्रसमन्तपञ्चकं
पितामहस्योत्तरवेदिरुच्यते ॥ ५९

लोमहर्षणजी बोले—सबसे पहले उत्पन्न होनेवाले कमलासन ब्रह्मा, लक्ष्मीके सहित विष्णु और महादेव रुद्रको सिर झुकाकर प्रणाम करके मैं महान् ब्रह्मसर तीर्थका वर्णन करता हूँ। ब्रह्माने पहले कहा था कि वह 'संनिहित' सरोवर 'रन्तुक' नामक स्थानसे लेकर 'औजस' नामक स्थानतक तथा 'पावन'से 'चतुर्मुख' तक फैला हुआ है। ब्राह्मणश्रेष्ठो! किंतु अब कलि और द्वापरके मध्यमें महात्मा व्यासने सरोवरका जो (वर्तमान) प्रमाण बतलाया है उसे आपलोग सुनें। 'विश्वेश्वर' स्थानसे 'अस्थिपुर'तक और 'वृद्धा-कन्या'से लेकर 'ओघवती' नदीतक यह सरोवर स्थित है॥ ४९—५२॥

ब्राह्मणश्रेष्ठो! मैंने वामनपुराणमें वर्णित जो प्रमाण सुना है, आप उस पवित्र एवं कल्याणकारी प्रमाणको सुनें। विश्वेश्वर स्थानसे देववरतक एवं नृपावनसे सरस्वतीतक चतुर्दिक् आधे योजन (दो कोसों)-में फैले इस संनिहित सरको समझना चाहिये। मोक्षकी इच्छासे आये हुए देवता एवं ऋषिगण इसका आश्रय लेकर सदा इसका सेवन करते हैं तथा अन्य लोग स्वर्गके निमित्त यहाँ रहते हैं। योगीश्वर ब्रह्माने सृष्टिकी इच्छासे एवं भगवान् श्रीविष्णुने जगत्के पालनकी कामनासे इसका आश्रय लिया था॥ ५३—५६॥

(इसी प्रकार) सरोवरके मध्यमें पैठकर महात्मा रुद्रने भी इस तीर्थका सेवन किया, जिससे महातेजस्वी (उन) हरको स्थाणुत्व (स्थिरत्व) प्राप्त हुआ। आदिमें यह 'ब्रह्मवेदी' कहा गया था, किंतु आगे चलकर इसका नाम 'रामह्रद' हुआ। उसके बाद राजर्षि कुरुद्वारा जोते जानेसे इसका नाम 'कुरुक्षेत्र' पड़ा। तरन्तुक एवं अरन्तुक नामके स्थानोंका मध्य तथा रामह्रद एवं चतुर्मुखका मध्यभाग समन्तपञ्चक है, जो कुरुक्षेत्र कहा जाता है। इसे पितामहकी उत्तरवेदी भी कहते हैं॥ ५७—५९॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें बाईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २२॥

Scanned with CamScanner

अदक्षिणास्तथा यज्ञाः क्रियाश्चाविधिना कृताः।
फलानि तव दास्यन्ति अधीतान्यव्रतानि च॥ ७९

उदकेन विना पूजा विना दर्भेण या क्रिया।
आज्येन च विना होमं फलं दास्यन्ति ते बले॥ ८०

यश्चेदं स्थानमाश्रित्य क्रियाः काश्चित् करिष्यति।
न तत्र चासुरो भागो भविष्यति कदाचन॥ ८१

ज्येष्ठाश्रमे महापुण्ये तथा विष्णुपदे ह्रदे।
ये च श्राद्धानि दास्यन्ति व्रतं नियममेव च॥ ८२

क्रिया कृता च या काचिद् विधिनाऽविधिनापि वा।
सर्वं तदक्षयं तस्य भविष्यति न संशयः॥ ८३

ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे एकादश्यामुपोषितः।
द्वादश्यां वामनं दृष्ट्वा स्नात्वा विष्णुपदे ह्रदे।
दानं दत्त्वा यथाशक्त्या प्राप्नोति परमं पदम्॥ ८४

लोमहर्षण उवाच

बलेर्वरमिमं दत्त्वा शक्राय च त्रिविष्टपम्।
व्यापिना तेन रूपेण जगामादर्शनं हरिः॥ ८५

शशास च यथापूर्वमिन्द्रस्त्रैलोक्यमूर्जितः।
निःशेषं च तदा कालं बलिः पातालमास्थितः॥ ८६

इत्येतत् कथितं तस्य विष्णोर्माहात्म्यमुत्तमम्।
शृणुयाद्यो वामनस्य सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ८७

बलिप्रह्लादसंवादं मन्त्रितं बलिशुक्रयोः।
बलेर्विष्णोश्च चरितं ये स्मरिष्यन्ति मानवाः॥ ८८

नाधयो व्याधयस्तेषां न च मोहाकुलं मनः।
भविष्यति द्विजश्रेष्ठाः पुंसस्तस्य कदाचन॥ ८९

च्युतराज्यो निजं राज्यमिष्टप्राप्तिं वियोगवान्।
समाप्नोति महाभागा नरः श्रुत्वा कथामिमाम्॥ ९०

ब्राह्मणो वेदमाप्नोति क्षत्रियो जयते महीम्।
वैश्यो धनसमृद्धिं च शूद्रः सुखमवाप्नुयात्।
वामनस्य च माहात्म्यं शृण्वन् पापैः प्रमुच्यते॥ ९१

दक्षिणारहित यज्ञ, अविधिपूर्वक किये गये कर्म और व्रतसे रहित अध्ययन तुम्हें फल प्रदान करेंगे। हे बलि! जलके बिना की गयी पूजा, बिना कुशकी की गयी क्रिया और बिना घीके किये गये हवन तुमको फल देंगे। इस स्थानका आश्रय कर जो मनुष्य किन्हीं भी क्रियाओंको करेगा, उसमें कभी भी असुरोंका अधिकार न होगा। अत्यन्त पवित्र ज्येष्ठाश्रम तथा विष्णुपद सरोवरमें जो श्राद्ध, दान, व्रत या नियम-पालन करेगा तथा विधि या अविधिपूर्वक जो कोई क्रिया वहाँ की जायगी, उसके लिये वे सभी निःसंदेह अक्षय फलदायी होगा। जो मनुष्य ज्येष्ठमासके शुक्ल पक्षमें एकादशीके दिन उपवास कर द्वादशीके दिन विष्णुपद नामके सरोवरमें स्नान कर वामनका दर्शन करनेके बाद यथाशक्ति दान देगा, वह परम पदको प्राप्त करेगा॥ ७८—८४॥

लोमहर्षणजी बोले—भगवान् उस सर्वव्यापी रूपसे बलिको यह वरदान तथा इन्द्रको स्वर्ग प्रदानकर अन्तर्हित हो गये। तबसे बलशाली इन्द्र पहलेकी भाँति तीनों लोकोंका शासन करने लगे और बलि सर्वदा पातालमें निवास करने लगे। इस प्रकार उन भगवान् (वामन) विष्णुका उत्तम माहात्म्य कहा गया; जो इसे (वामन-माहात्म्यको) सुनता है, वह सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। द्विजश्रेष्ठो! बलि एवं प्रह्लादके संवाद, बलि एवं शुक्रकी मन्त्रणा तथा बलि एवं विष्णुके चरितका जो मनुष्य स्मरण करेंगे, उन्हें कभी कोई आधि एवं व्याधि न होगी तथा उनका मन भी मोहसे आकुल नहीं होगा। हे महाभागो! इस कथाको सुनकर राज्यच्युत व्यक्ति अपने राज्यको एवं वियोगी मनुष्य अपने प्रियको प्राप्त करता है। (इनको सुननेसे) ब्राह्मणको वेदकी प्राप्ति होती है, क्षत्रिय पृथ्वीकी जय प्राप्त करता है तथा वैश्यको धन-समृद्धि एवं शूद्रको सुखकी प्राप्ति होती है। वामनका माहात्म्य सुननेसे पापोंसे मुक्ति होती है॥ ८५—९१॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें इकतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३१॥

Scanned with CamScanner

बत्तीसवाँ अध्याय

सरस्वती नदीका वर्णन—उसका कुरुक्षेत्रमें प्रवाहित होना

ऋषय ऊचुः

कथमेषा समुत्पन्ना नदीनामुत्तमा नदी।
सरस्वती महाभागा कुरुक्षेत्रप्रवाहिनी॥ १

कथं सरः समासाद्य कृत्वा तीर्थानि पार्श्वतः।
प्रयाता पश्चिमामाशां दृश्यादृश्यगतिः शुभा।
एतद् विस्तरतो ब्रूहि तीर्थवंशं सनातनम्॥ २

ऋषियोंने पूछा—(लोमहर्षणजी!) कुरुक्षेत्रमें प्रवाहित होनेवाली नदियोंमें श्रेष्ठ भाग्यशालिनी यह सरस्वती नदी कैसे उत्पन्न हुई? सरोवरमें जाकर अगल-बगलमें (अपने दोनों तटोंपर) तीर्थोंकी स्थापना करती हुई दृश्य और अदृश्यरूपसे यह शुभ नदी किस प्रकार पश्चिम दिशाको गयी? इस सनातन तीर्थ-वंशका विस्तारपूर्वक वर्णन करें॥ १-२॥

लोमहर्षण उवाच

प्लक्षवृक्षात् समुद्भूता सरिच्छ्रेष्ठा सनातनी।
सर्वपापक्षयकरी स्मरणादेव नित्यशः॥ ३

सैषा शैलसहस्राणि विदार्य च महानदी।
प्रविष्टा पुण्यतोयौघा वनं द्वैतमिति स्मृतम्॥ ४

तस्मिन् प्लक्षे स्थितां दृष्ट्वा मार्कण्डेयो महामुनिः।
प्रणिपत्य तदा मूर्ध्ना तुष्टावाथ सरस्वतीम्॥ ५

त्वं देवि सर्वलोकानां माता देवारणिः शुभा।
सदसद् देवि यत्किंचिन्मोक्षदाय्यर्थवत् पदम्॥ ६

तत् सर्वं त्वयि संयोगि योगिवद् देवि संस्थितम्।
अक्षरं परमं देवि यत्र सर्वं प्रतिष्ठितम्।
अक्षरं परमं ब्रह्म विश्वं चैतत् क्षरात्मकम्॥ ७

दारुण्यवस्थितो वह्निर्भूमौ गन्धो यथा ध्रुवम्।
तथा त्वयि स्थितं ब्रह्म जगच्चेदमशेषतः॥ ८

ओंकाराक्षरसंस्थानं यत् तद् देवि स्थिरास्थिरम्।
तत्र मात्रात्रयं सर्वमस्ति यद् देवि नास्ति च॥ ९

त्रयो लोकास्त्रयो वेदास्त्रैविद्यं पावकत्रयम्।
त्रीणि ज्योतींषि वर्गाश्च त्रयो धर्मादयस्तथा॥ १०

लोमहर्षणने कहा—(ऋषियो!) स्मरण करनेमात्रसे ही नित्य सभी पापोंको नष्ट करनेवाली यह सनातनी श्रेष्ठ (सरस्वती) नदी पाकड़ वृक्षसे उत्पन्न हुई है। यह पवित्र जलधारमयी महानदी हजारों पर्वतोंको तोड़ती-फोड़ती हुई प्रसिद्ध द्वैत वनमें प्रविष्ट हुई, ऐसी प्रसिद्धि है। महामुनि मार्कण्डेयने उस प्लक्षवृक्षमें स्थित सरस्वती नदीको देखकर सिरसे (सिर झुकाकर नम्रतापूर्वक) प्रणाम करनेके बाद उसकी स्तुति की—हे देवि! आप सभी लोकोंकी माता एवं देवोंकी शुभ अरणि हैं। देवि! समस्त सद्, असद्, मोक्ष देनेवाले एवं अर्थवान् पद, यौगिक क्रियासे युक्त पदार्थकी भाँति आपमें मिलकर स्थित हैं। देवि! अक्षर परमब्रह्म तथा यह विनाशशील समस्त संसार आपमें प्रतिष्ठित है॥ ३—७॥

जिस प्रकार काठमें आग एवं पृथिवीमें गन्धकी निश्चित स्थिति होती है, उसी प्रकार तुम्हारे भीतर ब्रह्म और यह सम्पूर्ण जगत् नित्य (सदा) स्थित हैं। देवि! जो कुछ भी स्थिर (अचर) तथा अस्थिर (चर) है, वह सब ओंकार अक्षरमें अवस्थित है। जो कुछ भी अस्तित्वयुक्त है या अस्तित्वविहीन, उन सबमें ओंकारकी तीन मात्राएँ (अनुस्यूत) हैं। हे सरस्वति! भूः, भुवः, स्वः—ये तीनों लोक; ऋक्, यजुः, साम—ये तीनों वेद; आन्वीक्षिकी, त्रयी और वार्ता—ये तीनों विद्याएँ; गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिणाग्नि—ये तीनों अग्नियाँ; सूर्य, चन्द्र, अग्नि—ये तीनों ज्योतियाँ; धर्म, अर्थ, काम—ये तीनों

Scanned with CamScanner

त्रयो गुणास्त्रयो वर्णास्त्रयो देवास्तथा क्रमात्।
त्रैधातवस्तथावस्थाः पितरश्चैवमादयः॥ ११

एतन्मात्रात्रयं देवि तव रूपं सरस्वति।
विभिन्नदर्शनामाद्यां ब्रह्मणो हि सनातनीम्॥ १२
सोमसंस्था हविःसंस्था पाकसंस्था सनातनी।
तास्त्वदुच्चारणाद् देवि क्रियन्ते ब्रह्मवादिभिः॥ १३

अनिर्देश्यपदं त्वेतदर्द्धमात्राश्रितं परम्।
अविकार्यक्षयं दिव्यं परिणामविवर्जितम्॥ १४

तवैतत् परमं रूपं यन्न शक्यं मयोदितुम्।
न चास्येन न वा जिह्वातालवोष्ठादिभिरुच्यते॥ १५

स विष्णुः स वृषो ब्रह्मा चन्द्रार्कज्योतिरेव च।
विश्वावासं विश्वरूपं विश्वात्मानमनीश्वरम्॥ १६
सांख्यसिद्धान्तवेदोक्तं बहुशाखास्थिरीकृतम्।
अनादिमध्यनिधनं सदसच्च सदेव तु॥ १७

एकं त्वनेकधाप्येकभाववेदसमाश्रितम्।
अनाख्यं षड्गुणाख्यं च बह्वाख्यं त्रिगुणाश्रयम्॥ १८

नानाशक्तिविभावज्ञं नानाशक्तिविभावकम्।
सुखात् सुखं महत्सौख्यं रूपं तत्त्वगुणात्मकम्॥ १९

एवं देवि त्वया व्याप्तं सकलं निष्कलं च यत्।
अद्वैतावस्थितं ब्रह्म यच्च द्वैते व्यवस्थितम्॥ २०

येऽर्था नित्या ये विनश्यन्ति चान्ये
येऽर्थाः स्थूला ये तथा सन्ति सूक्ष्माः।
ये वा भूमौ येऽन्तरिक्षेऽन्यतो वा
तेषां देवि त्वत्त एवोपलब्धिः॥ २१
यद्वा मूर्तं यदमूर्तं समस्तं
यद्वा भूतेष्वेकमेकं च किंचित्।
यच्च द्वैते व्यस्तभूतं च लक्ष्यं
तत्सम्बद्धं त्वत्स्वरैर्व्यञ्जनैश्च॥ २२

वर्ग; सत्त्व, रज, तम—ये तीनों गुण; ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य—ये तीनों वर्ण; तीनों देव; वात, पित्त, कफ—ये तीनों धातुएँ तथा जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति—ये तीनों अवस्थाएँ एवं पिता, पितामह, प्रपितामह—ये तीनों पितर इत्यादि—ये सभी ओंकारके मात्रात्रयस्वरूप आपके रूप हैं। आपको ब्रह्मकी विभिन्न रूपोंवाली आद्या एवं सनातनी मूर्ति कहा जाता है॥ ८—१२॥

देवि! ब्रह्मवादी लोग आपकी शक्तिसे ही उच्चारण करके सोमसंस्था, हविःसंस्था एवं सनातनी पाकसंस्थाको सम्पन्न करते हैं। अर्धमात्रामें आश्रित आपका यह अनिर्देश्य पद अविकारी, अक्षय, दिव्य तथा अपरिणामी है। यह आपका अनिर्देश्य पद परम रूप है, जिसका वर्णन मैं नहीं कर सकता। न तो मुखसे ही इसका वर्णन हो सकता है और न जिह्वा, तालु, ओष्ठ आदिसे ही। तुम्हारा वह रूप ही विष्णु, वृष (धर्म), ब्रह्मा, चन्द्रमा, सूर्य एवं ज्योति है। उसीको विश्वावास, विश्वरूप, विश्वात्मा एवं अनीश्वर (स्वतन्त्र) कहते हैं॥ १३—१६॥

आपका यह रूप सांख्य-सिद्धान्त तथा वेदद्वारा वर्णित, (वेदोंकी) बहुत-सी शाखाओंद्वारा स्थिर किया हुआ, आदि-मध्य-अन्तसे रहित, सत्-असत् अथवा एकमात्र सत् (ही) है। यह एक तथा अनेक प्रकारका, वेदोंद्वारा एकाग्र भक्तिसे अवलम्बित, आख्या (नाम)-विहीन, ऐश्वर्य आदि षड्गुणोंसे युक्त, बहुत नामोंवाला तथा त्रिगुणाश्रय है। आपका यह तत्त्वगुणात्मक रूप सुखसे भी परम सुख, महान् सुखरूप नाना शक्तियोंके विभावको जाननेवाला है। हे देवि! वह अद्वैत तथा द्वैतमें आश्रित 'निष्कल' तथा 'सकल ब्रह्म' आपके द्वारा व्याप्त है॥ १७—२०॥

(सरस्वती) देवि! जो पदार्थ नित्य हैं तथा जो विनष्ट हो जानेवाले हैं, जो पदार्थ स्थूल हैं तथा जो सूक्ष्म हैं, जो भूमिपर हैं तथा जो अन्तरिक्षमें हैं या जो इनसे भिन्न स्थानोंमें हैं, उन समस्त पदार्थोंकी प्राप्ति आपसे ही होती है। जो मूर्त या अमूर्त है वह सब कुछ और जो सब भूतोंमें एक रूपसे स्थित है एवं केवल एकमात्र है और जो द्वैतमें अलग-अलग रूपसे दिखलायी पड़ता है, वह सब कुछ आपके स्वर-व्यञ्जनोंसे सम्बद्ध है।

Scanned with CamScanner

एवं स्तुता तदा देवी विष्णोर्जिह्वा सरस्वती।
प्रत्युवाच महात्मानं मार्कण्डेयं महामुनिम्।
यत्र त्वं नेष्यसे विप्र तत्र यास्याम्यतन्द्रिता॥ २३

इस प्रकार स्तुति किये जानेपर विष्णुकी जीभरूपिणी सरस्वतीने महामुनि महात्मा मार्कण्डेयसे कहा—हे विप्र! तुम मुझे जहाँ ले जाओगे, मैं वहीं आलस्य छोड़कर चली जाऊँगी॥ २१—२३॥

मार्कण्डेय उवाच

आद्यं ब्रह्मसरः पुण्यं ततो रामह्रदः स्मृतः।
कुरुणा ऋषिणा कृष्टं कुरुक्षेत्रं ततः स्मृतम्।
तस्य मध्येन वै गाढं पुण्या पुण्यजलावहा॥ २४

मार्कण्डेयने कहा—आरम्भमें (इसका) पवित्र नाम ब्रह्मसर था, फिर रामह्रद प्रसिद्ध हुआ एवं उसके बाद कुरु ऋषिद्वारा कृष्ट होनेसे कुरुक्षेत्र कहा जाने लगा। (अब) उसके मध्यमें अत्यन्त पवित्र जलवाली गहरी सरस्वती प्रवाहित हों॥ २४॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३२॥

तैंतीसवाँ अध्याय

सरस्वती नदीका कुरुक्षेत्रमें प्रवाहित होना और कुरुक्षेत्रमें निवास करने तथा तीर्थमें स्नान करनेका महत्त्व

लोमहर्षण उवाच

इत्यृषेर्वचनं श्रुत्वा मार्कण्डेयस्य धीमतः।
नदी प्रवाहसंयुक्ता कुरुक्षेत्रं विवेश ह॥ १

तत्र सा रन्तुकं प्राप्य पुण्यतोया सरस्वती।
कुरुक्षेत्रं समाप्लाव्य प्रयाता पश्चिमां दिशम्॥ २

तत्र तीर्थसहस्राणि ऋषिभिः सेवितानि च।
तान्यहं कीर्तयिष्यामि प्रसादात् परमेष्ठिनः॥ ३

तीर्थानां स्मरणं पुण्यं दर्शनं पापनाशनम्।
स्नानं मुक्तिकरं प्रोक्तमपि दुष्कृतकर्मणः॥ ४
ये स्मरन्ति च तीर्थानि देवताः प्रीणयन्ति च।
स्नान्ति च श्रद्दधानाश्च ते यान्ति परमां गतिम्॥ ५

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत कुरुक्षेत्रं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥ ६

कुरुक्षेत्रं गमिष्यामि कुरुक्षेत्रे वसाम्यहम्।
इत्येवं वाचमुत्सृज्य सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ७

लोमहर्षणने कहा—बुद्धिमान् मार्कण्डेय ऋषिके इस उपर्युक्त वचनको सुनकर प्रवाहसे भरी हुई सरस्वती नदी कुरुक्षेत्रमें प्रविष्ट हुई। वह पवित्रसलिला सरस्वती नदी वहाँ रन्तुकमें जाकर कुरुक्षेत्रको जलसे प्लावित करती हुई, जो पश्चिम दिशाकी ओर चली गयी, वहाँ (कुरुक्षेत्रमें) हजारों तीर्थ ऋषियोंसे सेवित हैं। परमेष्ठी (ब्रह्मा)-के प्रसादसे मैं उनका वर्णन करूँगा। पापियोंके लिये भी तीर्थोंका स्मरण पुण्यदायक, उनका दर्शन पापनाशक और स्नान मुक्तिदायक कहा गया है (पुण्यशालियोंके लिये तो कहना ही क्या है)॥ १—४॥

जो श्रद्धापूर्वक तीर्थोंका स्मरण करते हैं और उनमें स्नान करते हैं तथा देवताओंको प्रसन्न करते हैं, वे परम गति (मोक्ष)-को प्राप्त करते हैं। (मनुष्य) अपवित्र हो या पवित्र अथवा किसी भी अवस्थामें पड़ा हुआ हो, यदि कुरुक्षेत्रका स्मरण करे तो वह बाहर तथा भीतरसे (हर प्रकारसे) पवित्र हो जाता है। 'मैं कुरुक्षेत्रमें जाऊँगा और मैं कुरुक्षेत्रमें निवास करूँगा'—इस प्रकारका वचन कहनेसे (भी) मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है।

Scanned with CamScanner

लोमहर्षण उवाच

पुरा वै दण्डकारण्ये राघवेण महात्मना।
वसता द्विजशार्दूला राक्षसास्तत्र हिंसिताः॥ ५
तत्रैकस्य शिरश्छिन्नं राक्षसस्य दुरात्मनः।
क्षुरेण शितधारेण तत् पपात महावने॥ ६
रहोदरस्य तल्लग्नं जङ्घायां वै यदृच्छया।
वने विचरतस्तत्र अस्थि भित्त्वा विवेश ह॥ ७
स तेन लग्नेन तदा द्विजातिर्न शशाक ह।
अभिगन्तुं महाप्राज्ञस्तीर्थान्यायतनानि च॥ ८
स पूतिना विस्रवता वेदनार्त्तो महामुनिः।
जगाम सर्वतीर्थानि पृथिव्यां यानि कानि च॥ ९

ततः स कथयामास ऋषीणां भावितात्मनाम्।
तेऽब्रुवन् ऋषयो विप्रं प्रयाह्यौशनसं प्रति॥ १०

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा जगाम स रहोदरः।
ततस्त्वौशनसे तीर्थे तस्योपस्पृशतस्तदा॥ ११

तच्छिरश्चरणं मुक्त्वा पपातान्तर्जले द्विजाः।
ततः स विरजो भूत्वा पूतात्मा वीतकल्मषः॥ १२

आजगामाश्रमं प्रीतः कथयामास चाखिलम्।
ते श्रुत्वा ऋषयः सर्वे तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम्।
कपालमोचनमिति नाम चक्रुः समागताः॥ १३
तत्रापि सुमहत्तीर्थं विश्वामित्रस्य विश्रुतम्।
ब्राह्मण्यं लब्धवान् यत्र विश्वामित्रो महामुनिः॥ १४

तस्मिंस्तीर्थवरे स्नात्वा ब्राह्मण्यं लभते ध्रुवम्।
ब्राह्मणस्तु विशुद्धात्मा परं पदमवाप्नुयात्॥ १५

ततः पृथूदकं गच्छेन्नियतो नियताशनः।
तत्र सिद्धस्तु ब्रह्मर्षी रुषङ्गुर्नाम नामतः॥ १६

जातिस्मरो रुषङ्गुस्तु गङ्गाद्वारे सदा स्थितः।
अन्तकालं ततो दृष्ट्वा पुत्रान् वचनमब्रवीत्।

लोमहर्षणजी बोले—द्विजश्रेष्ठो! प्राचीन कालमें दण्डकारण्यमें रहते हुए रघुवंशी महात्मा रामचन्द्रने बहुत-से राक्षसोंको मारा था। वहाँ एक दुष्टात्मा राक्षसका सिर तीक्ष्णधारवाले क्षुर नामक बाणसे कटकर उस महावनमें गिरा। (फिर वह) संयोगवश वनमें विचरण करते हुए रहोदर मुनिकी जंघामें उनकी हड्डीको तोड़कर उससे चिपट गया। महाप्राज्ञ वे ब्राह्मणदेव (जंघेकी टूटी हड्डीमें) उस मस्तकके लग जानेके कारण तीर्थों और देवालयोंमें नहीं जा पाते थे॥ ५—८॥

वे महामुनि दुर्गन्धपूर्ण पीव आदि बहनेके कारण तथा वेदनासे अत्यन्त दुःखी रहते थे। पृथ्वीके जिन-जिन तीर्थोंमें वे गये, वहाँ-वहाँ उन्होंने पवित्रात्मा ऋषियोंसे (अपना दुःख) कहा। ऋषियोंने उन विप्रसे कहा—ब्राह्मणदेव! आप औशनस (तीर्थ)-में जाइये। (लोमहर्षणने कहा—) द्विजो! उनका यह वचन सुनकर रहोदर मुनि वहाँसे औशनसतीर्थमें गये। वहाँ उन्होंने तीर्थ-जलका स्पर्श किया। उनके द्वारा (जलका) स्पर्श होते ही वह मस्तक उनसे (जाँघ)-को छोड़कर जलमें गिर गया। उसके बाद वे मुनि पापसे रहित निर्मल रजोगुणसे रहित अतएव पवित्रात्मा होकर प्रसन्नतापूर्वक (अपने) आश्रममें गये और उन्होंने (ऋषियोंसे) सारी आपबीती कह सुनायी। फिर तो उन आये हुए सभी ऋषियोंने औशनसतीर्थके इस उत्तम माहात्म्यको सुनकर उसका नाम 'कपालमोचन' रख दिया॥ ९—१३॥

वहीं (कपालमोचन तीर्थमें ही) महामुनि विश्वामित्रका बहुत बड़ा तीर्थ है, जहाँ विश्वामित्रने ब्राह्मणत्वको प्राप्त किया था। उस श्रेष्ठ तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्यको निश्चय रूपसे ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति होती है और वह ब्राह्मण विशुद्धात्मा होकर ब्रह्मके परम पदको प्राप्त करता है। कपालमोचनके बाद पृथूदक नामके तीर्थमें जाय और नियमपूर्वक नियत मात्रामें आहार करे। वहाँ रुषङ्गु नामके ब्रह्मर्षिने सिद्धि पायी थी। सदा गङ्गाद्वारमें स्थित रहते हुए पूर्वजन्मके वृत्तान्तको स्मरण रखनेवाले रुषङ्गुने (अपना) अन्तकाल आया देखकर (अपने) पुत्रोंसे कहा

Scanned with CamScanner

विज्ञाय तस्य तद्भावं रुषङ्गोस्ते तपोधनाः।
तं वै तीर्थं उपानिन्युः सरस्वत्यास्तपोधनम्॥ १८

स तैः पुत्रैः समानीतः सरस्वत्यां समाप्लुतः।
स्मृत्वा तीर्थगुणान् सर्वान् प्राहेदमृषिसत्तमः॥ १९

सरस्वत्युत्तरे तीर्थे यस्त्यजेदात्मनस्तनुम्।
पृथूदके जप्यपरो नूनं चामरतां व्रजेत्॥ २०

तत्रैव ब्रह्मयोन्यस्ति ब्रह्मणा यत्र निर्मिता।
पृथूदकं समाश्रित्य सरस्वत्यास्तटे स्थितः॥ २१

चातुर्वर्ण्यस्य सृष्ट्यर्थमात्मज्ञानपरोऽभवत्।
तस्याभिध्यायतः सृष्टिं ब्रह्मणो व्यक्तजन्मनः॥ २२

मुखतो ब्राह्मणा जाता बाहुभ्यां क्षत्रियास्तथा।
ऊरुभ्यां वैश्यजातीयाः पद्भ्यां शूद्रास्ततोऽभवन्॥ २३

चातुर्वर्ण्यं ततो दृष्ट्वा आश्रमस्थं ततस्ततः।
एवं प्रतिष्ठितं तीर्थं ब्रह्मयोनीति संज्ञितम्॥ २४

तत्र स्नात्वा मुक्तिकामः पुनर्योनिं न पश्यति।
तत्रैव तीर्थं विख्यातमवकीर्णेति नामतः॥ २५

यस्मिंस्तीर्थे वको दाल्भ्यो धृतराष्ट्रममर्षणम्।
जुहाव वाहनैः सार्धं तत्राबुध्यत् ततो नृपः॥ २६

ऋषय ऊचुः

कथं प्रतिष्ठितं तीर्थमवकीर्णेति नामतः।
धृतराष्ट्रेण राज्ञा च स किमर्थं प्रसादितः॥ २७

लोमहर्षण उवाच

ऋषयो नैमिषेया ये दक्षिणार्थं ययुः पुरा।
तत्रैव च वको दाल्भ्यो धृतराष्ट्रमयाचत॥ २८

तेनापि तत्र निन्दार्थमुक्तं पश्चनृतं तु यत्।
ततः क्रोधेन महता मांसमुत्कृत्य तत्र ह॥ २९

पृथूदके महातीर्थे अवकीर्णेति नामतः।
जुहाव धृतराष्ट्रस्य राष्ट्रं नरपतेस्ततः॥ ३०

हूयमाने तदा राष्ट्रे प्रवृत्ते यज्ञकर्मणि।
अक्षीयत ततो राष्ट्रं नृपतेर्दुष्कृतेन वै॥ ३१

(तीर्थ)-में ले चलो। रुषङ्गुके उस भावको जानकर वे तपोधन (पुत्र) उन तपके धनीको सरस्वतीके तीर्थमें ले गये॥ १४—१८॥

उन पुत्रोंद्वारा लाये गये उन ऋषिश्रेष्ठने सरस्वतीमें स्नान करनेके पश्चात् उस तीर्थके सब गुणोंका स्मरण कर यह कहा था—'सरस्वतीके उत्तरकी ओर स्थित पृथूदक नामके तीर्थमें अपने शरीरका त्याग करनेवाला जपपरायण मनुष्य निश्चय ही देवत्वको प्राप्त होता है।' वहीं ब्रह्माद्वारा निर्मित 'ब्रह्मयोनितीर्थ' है, जहाँ सरस्वतीके किनारे अवस्थित पृथूदकमें स्थित होकर ब्रह्मा चारों वर्णोंकी सृष्टिके लिये आत्मज्ञानमें लीन हुए थे। सृष्टिके विषयमें अव्यक्तजन्मा ब्रह्माके चिन्तन करनेपर उनके मुखसे ब्राह्मण, भुजाओंसे क्षत्रिय, दोनों ऊरुओंसे वैश्य और दोनों पैरोंसे शूद्र उत्पन्न हुए॥ १९—२३॥

उसके बाद उन्होंने चारों वर्णोंको विभिन्न आश्रमोंमें स्थित हुआ देखा। इस प्रकार ब्रह्मयोनि नामक तीर्थकी प्रतिष्ठा हुई थी। मुक्तिकी कामना करनेवाला व्यक्ति वहाँ स्नान करनेसे पुनर्जन्म नहीं देखता। वहीं अवकीर्ण नामक एक विख्यात तीर्थ भी है, जहाँपर दाल्भ्य (दल्भ या दल्भि गोत्रमें उत्पन्न) वक नामक ऋषिने क्रोधी धृतराष्ट्रको उसके वाहनोंके साथ हवन कर दिया था, तब कहीं राजाको (अपने किये कर्मका) ज्ञान हुआ था॥ २४—२६॥

ऋषियोंने पूछा—अवकीर्ण नामक तीर्थ कैसे प्रतिष्ठित हुआ एवं राजा धृतराष्ट्रने उन (वक दाल्भ्य मुनि)-को क्यों प्रसन्न किया था?॥ २७॥

लोमहर्षणने कहा—प्राचीन कालमें नैमिषारण्य-निवासी जो ऋषि दक्षिणा पानेके लिये (राजा धृतराष्ट्रके यहाँ) गये थे, उनमेंसे दल्भिवंशीय वक ऋषिने धृतराष्ट्रसे (धनकी) याचना की। उन्होंने (धृतराष्ट्रने) भी निन्दापूर्ण ग्राम्य और असत्य बात कही। उसके बाद वे (वक दाल्भ्य) अत्यन्त क्रुद्ध होकर पृथूदकमें स्थित अवकीर्ण नामक तीर्थमें जा करके मांस काट-काटकर धृतराष्ट्रके राष्ट्रके नाम हवन करने लगे। तब यज्ञमें राष्ट्रका हवन प्रारम्भ होनेपर राजाके दुष्कर्मके कारण राष्ट्रका क्षय होने लगा॥ २८—३१॥

Scanned with CamScanner

ततः स चिन्तयामास ब्राह्मणस्य विचेष्टितम्।
पुरोहितेन संयुक्तो रत्नान्यादाय सर्वशः॥ ३२

प्रसादनार्थं विप्रस्य ह्यवकीर्णं ययौ तदा।
प्रसादितः स राज्ञा च तुष्टः प्रोवाच तं नृपम्॥ ३३

ब्राह्मणा नावमन्तव्याः पुरुषेण विजानता।
अवज्ञातो ब्राह्मणस्तु हन्यात् त्रिपुरुषं कुलम्॥ ३४

एवमुक्त्वा स नृपतिं राज्येन यशसा पुनः।
उत्थापयामास ततस्तस्य राज्ञे हिते स्थितः॥ ३५

तस्मिंस्तीर्थे तु यः स्नाति श्रद्दधानो जितेन्द्रियः।
स प्राप्नोति नरो नित्यं मनसा चिन्तितं फलम्॥ ३६

तत्र तीर्थं सुविख्यातं यायातं नाम नामतः।
यस्येह यजमानस्य मधु सुस्राव वै नदी॥ ३७

तस्मिन् स्नातो नरो भक्त्या मुच्यते सर्वकिल्बिषैः।
फलं प्राप्नोति यज्ञस्य अश्वमेधस्य मानवः॥ ३८

मधुस्रवं च तत्रैव तीर्थं पुण्यतमं द्विजाः।
तस्मिन् स्नात्वा नरो भक्त्या मधुना तर्पयेत् पितॄन्॥ ३९

तत्रापि सुमहत्तीर्थं वसिष्ठोद्वाहसंज्ञितम्।
तत्र स्नातो भक्तियुक्तो वासिष्ठं लोकमाप्नुयात्॥ ४०

(राष्ट्रको क्षीण होते देख) उसने विचार किया और वह इसे ब्राह्मणका विकर्म जानकर (उस ब्राह्मणको) प्रसन्न करनेके लिये समस्त रत्नोंको लेकर पुरोहितके साथ अवकीर्णतीर्थमें गया (और उस) राजाने उन्हें प्रसन्न कर लिया। प्रसन्न होकर उन्होंने राजासे कहा—(राजन्!) विद्वान् मनुष्यको ब्राह्मणका अपमान नहीं करना चाहिये। अपमानित हुआ ब्राह्मण मनुष्यके कुलके तीन पुरुषों (पीढ़ियों)-का विनाश कर देता है। ऐसा कहकर उन्होंने पुनः राजाको राज्य एवं यशके साथ सम्पन्न कर दिया और वे उस राजाके हितकारी हो गये॥ ३२—३५॥

उस (अवकीर्ण) तीर्थमें जो जितेन्द्रिय मनुष्य श्रद्धापूर्वक स्नान करता है, वह नित्य मनोऽभिलषित फल प्राप्त करता है। वहाँ 'यायात' (ययातिका तीर्थ) नामसे सुविख्यात तीर्थ है, जहाँ यज्ञ करनेवालेके लिये नदीने मधु बहाया था। उसमें भक्तिपूर्वक स्नान करनेसे मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है एवं उसे अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त होता है। द्विजो! वहीं 'मधुस्रव' नामक पवित्र तीर्थ है। उसमें मनुष्यको भक्तिपूर्वक स्नान कर मधुसे पितरोंका तर्पण करना चाहिये। वहींपर 'वसिष्ठोद्वाह' नामक सुन्दर महान् तीर्थ है, वहाँ भक्तिपूर्वक स्नान करनेवाला व्यक्ति महर्षि वसिष्ठके लोकको प्राप्त करता है॥ ३६—४०॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें उन्तालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३९॥

चालीसवाँ अध्याय

वसिष्ठापवाह नामक तीर्थका उत्पत्ति-प्रसङ्ग

ऋषय ऊचुः

वसिष्ठस्यापवाहोऽसौ कथं वै सम्बभूव ह।
किमर्थं सा सरिच्छ्रेष्ठा तमृषिं प्रत्यवाहयत्॥ १

लोमहर्षण उवाच

विश्वामित्रस्य राजर्षेर्वसिष्ठस्य महात्मनः।
भृशं वैरं बभूवेह तपःस्पर्द्धाकृते महत्॥ २

ऋषियोंने कहा (पूछा)—महाराज! वह वसिष्ठापवाह कैसे उत्पन्न हुआ? उस श्रेष्ठ सरिताने उन ऋषिको अपने प्रवाहमें क्यों बहा दिया था?॥ १॥

लोमहर्षण बोले—(ऋषियो!) राजर्षि विश्वामित्र एवं महात्मा वसिष्ठमें तपस्याके विषयमें परस्पर चुनौती होनेके कारण बड़ी भारी शत्रुता हो गयी।

Scanned with CamScanner

आश्रमो वै वसिष्ठस्य स्थाणुतीर्थे बभूव ह।
तस्य पश्चिमदिग्भागे विश्वामित्रस्य धीमतः॥ ३
यत्रेष्ट्वा भगवान् स्थाणुः पूजयित्वा सरस्वतीम्।
स्थापयामास देवेशो लिङ्गाकारां सरस्वतीम्॥ ४
वसिष्ठस्तत्र तपसा घोररूपेण संस्थितः।
तस्येह तपसा हीनो विश्वामित्रो बभूव ह॥ ५
सरस्वतीं समाहूय इदं वचनमब्रवीत्।
वसिष्ठं मुनिशार्दूलं स्वेन वेगेन आनय॥ ६
इहाहं तं द्विजश्रेष्ठं हनिष्यामि न संशयः।
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं व्यथिता सा महानदी॥ ७
तथा तां व्यथितां दृष्ट्वा वेपमानां महानदीम्।
विश्वामित्रोऽब्रवीत् क्रुद्धो वसिष्ठं शीघ्रमानय॥ ८
ततो गत्वा सरिच्छ्रेष्ठा वसिष्ठं मुनिसत्तमम्।
कथयामास रुदतो विश्वामित्रस्य तद् वचः॥ ९
तपःक्रियाविशीर्णां च भृशं शोकसमन्विताम्।
उवाच स सरिच्छ्रेष्ठां विश्वामित्राय मां वह॥ १०

वसिष्ठका आश्रम स्थाणुतीर्थमें था और उसके पश्चिम दिशामें बुद्धिमान् विश्वामित्र महर्षिका आश्रम था; जहाँ देवाधिदेव भगवान् शिवने यज्ञ करनेके बाद सरस्वतीकी पूजा कर मूर्तिके रूपमें सरस्वतीकी स्थापना की थी। वसिष्ठजी वहीं घोर तपस्यामें संलग्न थे। उनकी तपस्यासे विश्वामित्र (प्रभावतः) हीन-से होने लगे॥ २—५॥

(एक बार) विश्वामित्रने सरस्वतीको बुलाकर यह वचन कहा—सरस्वति! तुम मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठको अपने वेगसे बहा लाओ। मैं उन द्विजश्रेष्ठ वसिष्ठको यहाँ मारूँगा—इसमें संदेहकी बात नहीं है। इस (अवाञ्छनीय बात)-को सुनकर वह महानदी दुःखित हो गयी। (पर) विश्वामित्रने उस प्रकार दुःखित एवं काँपती हुई उस महानदीको देखकर क्रोधमें भरकर कहा कि वसिष्ठको शीघ्र लाओ। उसके बाद उस श्रेष्ठ नदीने मुनिश्रेष्ठके पास जाकर उनसे रोते हुए विश्वामित्रकी उस बातको कहा॥ ६—९॥

उन वसिष्ठजीने तपश्चर्यासे दुर्बल एवं अतिशय शोक-समन्वित उस श्रेष्ठ सरिता (सरस्वती)-से कहा—(तुम) विश्वामित्रके पास मुझे बहा ले चलो। उन दयालुके उस वचनको सुनकर उस सरस्वती सरिताने जलके (तेज) प्रवाहद्वारा उन्हें उस स्थानसे बहाना प्रारम्भ किया। किनारेसे ले जाये जानेके कारण बहते हुए मित्रावरुणके पुत्र वसिष्ठ-ऋषि प्रसन्न होकर देवी सरस्वतीकी स्तुति करने लगे—सरस्वति! आप ब्रह्माके सरोवरसे निकली हैं। आपने अपने उत्तम जलसे समस्त जगत्को व्याप्त कर दिया है॥ १०—१३॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा कृपाशीलस्य सा सरित्।
चालयामास तं स्थानात् प्रवाहेणाम्भसस्तदा॥ ११
स च कूलापहारेण मित्रावरुणयोः सुतः।
उह्यमानश्च तुष्टाव तदा देवीं सरस्वतीम्॥ १२
पितामहस्य सरसः प्रवृत्ताऽसि सरस्वति।
व्याप्तं त्वया जगत् सर्वं तवैवाम्भोभिरुत्तमैः॥ १३
त्वमेवाकाशगा देवी मेघेषु सृजसे पयः।
सर्वास्त्वापस्त्वमेवेति त्वत्तो वयमधीमहे॥ १४

'आप ही आकाशगामिनी देवी हैं और मेघोंमें जलको उत्पन्न करती हैं। आप ही सभी जलोंके रूपमें वर्तमान हैं। आपकी ही शक्तिसे हमलोग अध्ययन करते हैं। आप ही पुष्टि, धृति, कीर्ति, सिद्धि, कान्ति, क्षमा, स्वधा, स्वाहा तथा सरस्वती हैं। यह पूरा विश्व आपके ही अधीन है। आप ही समस्त प्राणियोंमें वाणीरूपसे स्थित हैं।' वसिष्ठजीने भगवती सरस्वतीकी इस प्रकार स्तुति की और सरस्वती नदीने उन विप्रदेवको विश्वामित्रके आश्रममें सुखपूर्वक पहुँचा दिया और खिन्न होकर उन मुनिको विश्वामित्रके लिये निवेदित कर दिया॥ १४—१७॥

पुष्टिर्धृतिस्तथा कीर्त्तिः सिद्धिः कान्तिः क्षमा तथा।
स्वधा स्वाहा तथा वाणी तवायत्तमिदं जगत्॥ १५
त्वमेव सर्वभूतेषु वाणीरूपेण संस्थिता।
एवं सरस्वती तेन स्तुता भगवती सदा॥ १६
सुखेनोवाह तं विप्रं विश्वामित्राश्रमं प्रति।
न्यवेदयत्तदा खिन्ना विश्वामित्राय तं मुनिम्॥ १७

Scanned with CamScanner

तमानीतं सरस्वत्या दृष्ट्वा कोपसमन्वितः।
अथान्विषत् प्रहरणं वसिष्ठान्तकरं तदा॥ १८

तं तु क्रुद्धमभिप्रेक्ष्य ब्रह्महत्याभयान्नदी।
अपोवाह वसिष्ठं तं मध्ये चैवाम्भसस्तदा।
उभयोः कुर्वती वाक्यं वञ्चयित्वा च गाधिजम्॥ १९

ततोऽपवाहितं दृष्ट्वा वसिष्ठमृषिसत्तमम्।
अब्रवीत् क्रोधरक्ताक्षो विश्वामित्रो महातपाः॥ २०

यस्मान्मां सरितां श्रेष्ठे वञ्चयित्वा विनिर्गता।
शोणितं वह कल्याणि रक्षोग्रामणिसंयुता॥ २१

उसके बाद सरस्वतीद्वारा बहाकर लाये गये वसिष्ठको देखकर विश्वामित्र क्रोधसे भर गये और वसिष्ठका अन्त करनेवाला शस्त्र ढूँढ़ने लगे। उन्हें क्रोधसे भरा हुआ देखकर ब्रह्महत्याके भयसे डरती हुई वह सरस्वती नदी गाधिपुत्र विश्वामित्रको वञ्चित कर दोनोंकी बातोंका पालन करती हुई उन वसिष्ठको जलमें (पुनः) बहा ले गयी। उसके बाद ऋषिप्रवर वसिष्ठको अपवाहित होते देखकर महातपस्वी विश्वामित्रके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये। फिर विश्वामित्रने कहा—ओ श्रेष्ठ नदी! यतः तुम मुझे वञ्चितकर चली गयी हो, कल्याणि! अतः श्रेष्ठ राक्षसोंसे संयुक्त होकर तुम शोणितका वहन करो—तुम्हारा जल रक्तसे युक्त हो जाय॥ १८—२१॥

ततः सरस्वती शप्ता विश्वामित्रेण धीमता।
अवहच्छोणितोन्मिश्रं तोयं संवत्सरं तदा॥ २२
अथर्षयश्च देवाश्च गन्धर्वाप्सरस्तदा।
सरस्वतीं तदा दृष्ट्वा बभूवुर्भृशदुःखिताः॥ २३
तस्मिंस्तीर्थवरे पुण्ये शोणितं समुपावहत्।
ततो भूतपिशाचाश्च राक्षसाश्च समागताः॥ २४
ततस्ते शोणितं सर्वे पिबन्तः सुखमासते।
तृप्ताश्च सुभृशं तेन सुखिता विगतज्वराः।
नृत्यन्तश्च हसन्तश्च यथा स्वर्गजितस्तथा॥ २५

उसके बाद बुद्धिमान् विश्वामित्रसे इस प्रकार शाप प्राप्तकर सरस्वतीने एक वर्षतक रक्तसे मिले हुए जलको बहाया। उसके पश्चात् सरस्वती नदीको रक्तसे मिश्रित जलवाली देखकर ऋषि, देवता, गन्धर्व और अप्सराएँ अत्यन्त दुःखित हो गयीं। (यतः) उस पवित्र श्रेष्ठ तीर्थमें रुधिर ही बहने लगा। अतः वहाँ भूत, पिशाच, राक्षस एकत्र होने लगे। वे सभी रक्तका पान करते हुए वहाँ आनन्दपूर्वक रहने लगे। वे उससे अत्यन्त तृप्त, सुखी एवं निश्चिन्त होकर इस प्रकार नाचने एवं हँसने लगे, मानो उन्होंने स्वर्गको जीत लिया हो॥ २२—२५॥

कस्यचित्त्वथ कालस्य ऋषयः सतपोधनाः।
तीर्थयात्रां समाजग्मुः सरस्वत्यां तपोधनाः॥ २६
तां दृष्ट्वा राक्षसैर्घोरैः पीयमानां महानदीम्।
परित्राणे सरस्वत्याः परं यत्नं प्रचक्रिरे॥ २७
ते तु सर्वे महाभागाः समागम्य महाव्रताः।
आहूय सरितां श्रेष्ठामिदं वचनमब्रुवन्॥ २८
किं कारणं सरिच्छ्रेष्ठे शोणितेन ह्रदो ह्यहम्।
एवमाकुलतां यातः श्रुत्वा वेत्स्यामहे वयम्॥ २९

कुछ समय बीतनेपर तपस्याके धनी ऋषिलोग तीर्थयात्रा करते-करते सरस्वतीके तटपर पहुँचे। (वहाँ) भयानक राक्षसोंके द्वारा पीती जाती हुई महानदी सरस्वतीको देखकर वे उसकी रक्षाके लिये महान् प्रयत्न करने लगे। और महान् व्रतोंका अनुष्ठान करनेवाले उन महाभागोंने श्रेष्ठ नदीको (पास) बुलाकर उससे यह वचन फिर कहा—श्रेष्ठ सरिते! हम सब आपसे यह जानना चाहते हैं कि यह जलाशय रक्तसे भरकर ऐसा क्षुब्ध कैसे हुआ है?॥ २६—२९॥

ततः सा सर्वमाचष्ट विश्वामित्रविचेष्टितम्।
ततस्ते मुनयः प्रीताः सरस्वत्यां समानयन्।
अरुणां पुण्यतोयौघां सर्वदुष्कृतनाशनीम्॥ ३०

तब उसने विश्वामित्रके समस्त विकर्मोंका (उनके सामने ही) वर्णन किया। उसके पश्चात् प्रसन्न हुए मुनिजन सरस्वती तथा समस्त पापोंका विनाश करनेवाली अरुणा नदीको ले आये। (जिससे सरस्वती-ह्रदका

Scanned with CamScanner

दृष्ट्वा तोयं सरस्वत्या राक्षसा दुःखिता भृशम्।
ऊचुस्तान् वै मुनीन् सर्वान् दैन्ययुक्ताः पुनः पुनः॥ ३१

वयं हि क्षुधिताः सर्वे धर्महीनाश्च शाश्वताः।
न च नः कामकारोऽयं यद् वयं पापकारिणः॥ ३२

युष्माकं चाप्रसादेन दुष्कृतेन च कर्मणा।
पक्षोऽयं वर्धतेऽस्माकं यतः स्मो ब्रह्मराक्षसाः॥ ३३

एवं वैश्याश्च शूद्राश्च क्षत्रियाश्च विकर्मभिः।
ये ब्राह्मणान् प्रद्विषन्ति ते भवन्तीह राक्षसाः॥ ३४

योषितां चैव पापानां योनिदोषेण वर्द्धते।
इयं संततिरस्माकं गतिरेषा सनातनी॥ ३५

शक्ता भवन्तः सर्वेषां लोकानामपि तारणे।
तेषां ते मुनयः श्रुत्वा कृपाशीलाः पुनश्च ते॥ ३६

ऊचुः परस्परं सर्वे तप्यमानाश्च ते द्विजाः।
क्षुतकीटावपन्नं च यच्चोच्छिष्टाशितं भवेत्॥ ३७

केशावपन्नमाधूतं मारुतश्वासदूषितम्।
एभिः संसृष्टमन्नं च भागं वै रक्षसां भवेत्॥ ३८
तस्माज्ज्ञात्वा सदा विद्वान् अन्नान्येतानि वर्जयेत्।
राक्षसानामसौ भुङ्क्ते यो भुङ्क्तेऽन्नमीदृशम्॥ ३९

शोधयित्वा तु तत्तीर्थमृषयस्ते तपोधनाः।
मोक्षार्थं रक्षसां तेषां संगमं तत्र कल्पयन्॥ ४०

अरुणायाः सरस्वत्याः संगमे लोकविश्रुते।
त्रिरात्रोपोषितः स्नातो मुच्यते सर्वकिल्बिषैः॥ ४१

प्राप्ते कलियुगे घोरे अधर्मे प्रत्युपस्थिते।
अरुणासंगमे स्नात्वा मुक्तिमाप्नोति मानवः॥ ४२

ततस्ते राक्षसाः सर्वे स्नाताः पापविवर्जिताः।
दिव्यमाल्याम्बरधराः स्वर्गस्थितिसमन्विताः॥ ४३

शोणित पवित्र जल हो गया) (पर) सरस्वतीके जलको (इस प्रकार शुद्ध हुआ) देखकर राक्षस बहुत दुःखित हो गये। वे दीनतापूर्वक उन सभी मुनियोंसे बार-बार कहने लगे कि हम सभी सदा भूखे एवं धर्मसे रहित रहते हैं। हम अपनी इच्छासे पापकर्म करनेवाले पापी नहीं बने हुए हैं, अपितु आपलोगोंकी अकृपा एवं अशोभन कर्मोंसे ही हमारा पक्ष बढ़ता रहता है; क्योंकि हम सभी ब्रह्मराक्षस हैं॥ ३०—३३॥

इसी प्रकार जो क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ब्राह्मणोंसे द्वेष करते हैं, वे (ऐसे ही) विकर्म करनेके कारण राक्षस हो जाते हैं। पापिनी स्त्रियोंके योनिदोषसे हमारी यह संतति बढ़ती रहती है। यह हमारी प्राचीन गति है। आपलोग सभी लोकोंका उद्धार करनेमें समर्थ हैं। (लोमहर्षणजी कहते हैं—) द्विजो! वे कृपालु मुनि उन सदाकी रीति ब्रह्मराक्षसोंके इन वचनोंको सुनकर बहुत दुःखी हुए और परस्पर परामर्शकर उनसे बोले—(ब्रह्मराक्षसो!) छींक तथा कीटके संसर्गसे दूषित, उच्छिष्ट भोजन, केशयुक्त, तिरस्कृत एवं श्वासवायुसे दूषित अन्न तुम राक्षसोंका भाग होगा॥ ३४—३८॥

(पुनः लोमहर्षणजी बोले—) ऋषियो! इसको जानकर विद्वान् पुरुषको चाहिये कि इस प्रकारके अन्नोंको त्याग दे। इस प्रकार अन्न खानेवाला व्यक्ति राक्षसोंका भाग खाता है। उन तपोधन ऋषियोंने उस तीर्थको शुद्धकर उन राक्षसोंकी मुक्तिके लिये वहाँ एक सङ्गमकी रचना की। [उसका फल इस प्रकार है] लोक-प्रसिद्ध अरुणा और सरस्वतीके सङ्गममें तीन दिनोंतक व्रतपूर्वक स्नान करनेवाला (व्यक्ति) सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। (आगे भी) घोर कलियुग आनेपर तथा अधर्मका अधिक प्रसार हो जानेपर मनुष्य अरुणाके सङ्गममें स्नान करके मुक्ति प्राप्त कर लेंगे। इसको सुननेके बाद उन सभी राक्षसोंने उसमें स्नान किया और वे निष्पाप हो गये तथा दिव्य माला और वस्त्र धारणकर स्वर्गमें विराजने लगे॥ ३९—४३॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें चालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ४०॥

Scanned with CamScanner

कलिकाले तु संप्राप्ते वसिष्ठाश्रममास्थितः।
चतुर्मुखं स्थापयित्वा ययौ सिद्धिमनुत्तमाम्॥ ४७

तत्रापि ये निराहाराः श्रद्दधाना जितेन्द्रियाः।
पूजयन्ति महादेवं ते यान्ति परमं पदम्॥ ४८

इत्येतत् स्थाणुतीर्थस्य माहात्म्यं कीर्त्तितं तव।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुक्तो भवति मानवः॥ ४९

कलिकाल आनेपर वसिष्ठाश्रममें स्थित होकर ब्रह्माने चतुर्मुख (शङ्कर)-की स्थापना की तथा उत्तम सिद्धि प्राप्त की। जो लोग वहाँ निराहार, श्रद्धायुक्त और जितेन्द्रिय होकर महादेवकी पूजा करेंगे, वे परमपदको प्राप्त करेंगे। इस प्रकार मैंने आपसे स्थाणुतीर्थका माहात्म्य बताया, जिसे सुनकर मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ४५—४९॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें उनचासवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ४९॥

पचासवाँ अध्याय

कुरुक्षेत्रके पृथूदकतीर्थके सन्दर्भमें अक्षय-तृतीयाके महत्त्वकी कथा

देवदेव उवाच

एवं पृथूदको देवाः पुण्यः पापभयापहः।
तं गच्छध्वं महातीर्थं यावत् संनिधिबोधितम्॥ १

यदा मृगशिरोऋक्षे शशिसूर्यौ बृहस्पतिः।
तिष्ठन्ति सा तिथिः पुण्या त्वक्षया परिगीयते॥ २

तं गच्छध्वं सुरश्रेष्ठा यत्र प्राची सरस्वती।
पितॄनाराधयध्वं हि तत्र श्राद्धेन भक्तितः॥ ३

ततो मुरारिवचनं श्रुत्वा देवाः सवासवाः।
समाजग्मुः कुरुक्षेत्रे पुण्यतीर्थं पृथूदकम्॥ ४
तत्र स्नात्वा सुराः सर्वे बृहस्पतिमचोदयन्।
विशस्व भगवन् ऋक्षमिमं मृगशिरं कुरु।
पुण्यां तिथिं पापहरां तव कालोऽयमागतः॥ ५

प्रवर्तते रविस्तत्र चन्द्रमाऽपि विशत्यसौ।
त्वदायत्तं गुरो कार्यं सुराणां तत् कुरुष्व च॥ ६

इत्येवमुक्तो देवैस्तु देवाचार्योऽब्रवीदिदम्।
यदि वर्षाधिपोऽहं स्यां ततो यास्यामि देवताः।
बाढमूचुः सुराः सर्वे ततोऽसौ प्राक्रमन्मृगम्॥ ७

देवदेव (महादेव)-**ने कहा**—देवताओ! इस प्रकार पृथूदकतीर्थ पाप-भयको नष्ट करनेवाला और पवित्र है। तुमलोग 'सन्निहित' तालाबतक (उस) ज्ञात (व्याप्त) होनेवाले महातीर्थमें जाओ। जिस तिथिमें चन्द्रमा, सूर्य एवं बृहस्पति—ये तीनों ग्रह मृगशिरा नक्षत्रमें स्थित होते हैं, उस पवित्र तिथिको 'अक्षया' तिथि कहते हैं। श्रेष्ठ देवताओ! जहाँ सरस्वती नदी पूर्व दिशामें बह रही है, वहाँ जाकर भक्ति-श्रद्धासे श्राद्ध करके पितरोंकी आराधना करो। भगवान्‌का निर्देश सुनकर इन्द्रके सहित सभी देवता कुरुक्षेत्रमें विद्यमान पृथूदक नामवाले पवित्र तीर्थमें गये॥ १—४॥

वहाँ स्नान करके सभी देवताओंने बृहस्पतिसे कहा—भगवन्! इस मृगशिरा नक्षत्रमें आप प्रविष्ट होकर पापविनाशिनी पवित्र तिथिका निर्माण (विधान) करें। आपका यह (निर्दिष्ट) समय आ गया है। सूर्य उस स्थानपर स्थित हैं तथा चन्द्रमा भी उसमें प्रविष्ट हो रहे हैं। हे बृहस्पति! देवताओंका कार्य आपके अधीन है, आप उसे पूरा करें। देवताओंके इस प्रकार कहनेपर देवोंके गुरु बृहस्पतिने यह कहा—देवताओ! यदि मैं वर्ष-स्वामी बनूँ तो (मृगशिरा नक्षत्रपर) जाऊँगा। सभी देवोंने कहा—ठीक है। तब उन्होंने (बृहस्पतिने) मृगशिरा नक्षत्रमें प्रवेश किया॥ ५—७॥

Scanned with CamScanner

आषाढे मासि मार्गर्क्षे चन्द्रक्षयतिथिर्हि या।
तस्यां पुरन्दरः प्रीतः पिण्डं पितृषु भक्तितः॥ ८
प्रादात् तिलमधून्मिश्रं हविष्यान्नं कुरुष्वथ।
ततः प्रीतास्तु पितरस्तां प्राहुस्तनयां निजाम्॥ ९
मेनां देवाश्च शैलाय हिमयुक्ताय वै ददुः।
तां मेनां हिमवाँल्लब्ध्वा प्रसादाद् दैवतेष्वथ।
प्रीतिमानभवच्चासौ रराम च यथेच्छया॥ १०
ततो हिमाद्रिः पितृकन्यया समं
समर्पयन् वै विषयान् यथेष्टम्।
अजीजनत् सा तनयाश्च तिस्रो
रूपातियुक्ताः सुरयोषितोपमाः॥ ११

आषाढ़ महीनेके मृगशिरा नक्षत्रमें चन्द्रक्षय (अमावस्या) तिथिके आ जानेपर इन्द्रने प्रसन्न होकर कुरुक्षेत्रमें भक्तिके साथ पितरोंको तिल और मधुसे मिला हुआ हविष्यान्नका पिण्ड प्रदान किया। तब पितरोंने देवोंको अपनी मेना नामकी कन्या दी। देवताओंने उसे हिमालयको सौंप दिया। देवोंके अनुग्रहसे उस मेनाको पाकर वे हिमवान् प्रसन्न हो गये और इच्छानुकूल विनोद-विहारमें लग गये। हिमालय पितरोंद्वारा दी गयी उस कन्याके साथ दाम्पत्यसुखमें आसक्त हो गये। फिर उस मेनाने भी सुरनारियोंके समान अत्यन्त रूपवती तीन कन्याओंको उत्पन्न किया॥ ८—११॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें पचासवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ५०॥

इक्यावनवाँ अध्याय

मेनाकी तीन कन्याओंका जन्म, कुटिला और रागिणीको शाप, उमाकी तपस्या, शिवद्वारा उमाकी परीक्षा एवं मन्दराचलपर गमन

पुलस्त्य उवाच

मेनायाः कन्यकास्तिस्त्रो जाता रूपगुणान्विताः।
सुनाभ इति च ख्यातश्चतुर्थस्तनयोऽभवत्॥ १
रक्ताङ्गी रक्तनेत्रा च रक्ताम्बरविभूषिता।
रागिणी नाम संजाता ज्येष्ठा मेनासुता मुने॥ २
शुभाङ्गी पद्मपत्राक्षी नीलकुञ्चितमूर्धजा।
श्वेतमाल्याम्बरधरा कुटिला नाम चापरा॥ ३
नीलाञ्जनचयप्रख्या नीलेन्दीवरलोचना।
रूपेणानुपमा काली जघन्या मेनकासुता॥ ४
जातास्ताः कन्यकास्तिस्रः षडब्दात् परतो मुने।
कर्तुं तपः प्रयातास्ता देवास्ता ददृशुः शुभाः॥ ५
ततो दिवाकरैः सर्वैर्वसुभिश्च तपस्विनी।
कुटिला ब्रह्मलोकं तु नीता शशिकरप्रभा॥ ६
अथोचुर्देवताः सर्वाः किं त्वियं जनयिष्यति।
पुत्रं महिषहन्तारं ब्रह्मन् व्याख्यातुमर्हसि॥ ७

पुलस्त्यजी बोले—मेनाको रूप और गुणोंसे सम्पन्न तीन कन्याएँ उत्पन्न हुईं और चौथा सुनाभ नामसे विख्यात पुत्र उत्पन्न हुआ। मुने! मेनाकी जेठी कन्या 'रागिणी' नामकी थी, जो लाल अङ्गों तथा लाल आँखोंवाली थी। वह लाल वस्त्रोंसे सुशोभित रहती थी। दूसरी 'कुटिला' नामकी कन्या थी, जो सुन्दर शरीरवाली, कमलदलनयना, नीले एवं घुँघराले बालोंवाली थी तथा उज्ज्वल माला और उज्ज्वल वस्त्र धारण किये रहती थी। मेनाकी तीसरी कन्याका नाम था 'काली'। उसका रंग नीले अञ्जनके ढेरके समान और आँखें नीले कमलके जैसी थीं। वह अत्यन्त सुन्दर थी॥ १—४॥

मुने! वे तीनों कन्याएँ जन्मसे छः वर्षके बाद तपस्या करने चली गयीं। देवताओंने उन सुन्दरी कन्याओंको देखा, फिर आदित्य तथा वसुगण चन्द्रमाकी किरणोंके समान कान्तिवाली तपस्विनी (मध्यमा कन्या) कुटिलाको ब्रह्मलोकमें ले गये। उसके बाद सभी देवताओंने ब्रह्मासे कहा कि ब्रह्मन्! आप बतलायें कि क्या यह कन्या महिषासुरको मारनेवाले पुत्रको जनेगी?

Scanned with CamScanner